VOL- VI ISSUE-XI NOVEMBER 2019 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 5.707 ISSN 2349-638x

श्रीगंगानगर व हनुमानगढ़ जिले का भूमि उपयोग व शस्य प्रबन्धन

अजय सिहाग
शोधार्थी
ओपीजेएस विश्वविद्यालय, चुरू (राज.)

भू—उपयोग प्रबन्धन

कृषि प्रधान जिलों में आर्थिक विकास व गरीबी निवारण में भूमि प्रबन्धन सर्वोच्च प्रमुखता रखता है, क्योंकि क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है, यहाँ लगभग ७५ प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है, अतः जिलों में भू—उपयोग प्रबन्धन की आवश्यक है, जिससे कृषि में भू—उपयोग सही ढंग से हो सके ताकि आर्थिक विकास में सुधार हो, और भूमि उपयोग में उतरोत्तर वृद्धि की जा सके। केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा भी भूमि प्रबन्धन के लिए निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं।

भूमि संरक्षण (प्रबन्धन) का मुख्य उद्धेश्य भूमि की अनियमित क्षति को रोकना है जिससे भूमि उपयोगिता में वृद्धि हो सके व जिले अर्थव्यवस्था में आत्म—निर्भर बन सके। स्टैलिंग के शब्दों में मिट्टी संरक्षक के लिए महत्वूर्ण मिट्टी कारकों को व्यवस्थित करने में भूमि प्रबन्धन में सहायता मिलती है, बढ़ती हुई जनसंख्या का भार सीमित भूमि संसाधन के लिए एक महान् चुनौती हैं। अतः जिलों में बढ़ती जनसंख्या का बढ़ता कृषि भूमि पर दबाव के लिए भू—उपयोग प्रबन्धन में आधुनिक कृषि, कृषि के विभिन्न यंत्र, कृषि में पशुशक्ति निवेश, श्रम का निवेश आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः जिलों में इसका अध्ययन आवश्यक है।

कृषि के विभिन्न यन्त्र—

कृषि कार्य में पूँजी नियोजन का सबसे बड़ा भाग यन्त्रों का निवेश है। कृषि यन्त्रों के प्रयोग से यद्यपि मानव श्रम का विस्थापन होता है, फिर भी कृषि कार्य सरलता एवं शीघ्रता से सम्पन्न होता है। कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों के लिए कृषि यन्त्रों का प्रयोग व्यापारिक स्तर पर कृषि कार्य करने हेतु वरदान सिद्ध हुआ है। कृषि प्रधान जिलों में भी इन यन्त्रों का प्रयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है। कृषि यन्त्रों के प्रयोग से न केवल जिलों की उत्पादकता में वृद्धि हुई वरन् कृषि पर प्रति हैक्टेयर व्यय भी कम हुआ है। बढ़ती हुई मजदूरी, श्रम, समय उपलब्ध न होना, पशु शक्ति निवेश की मंदी ने यांत्रिक शक्ति निवेश को प्रोत्साहन दिया है। यांत्रिक शक्ति का अधिकाधिक प्रयोग कृषि के आधुनिकरण का महत्वपूर्ण अंग है। किसी भी औजार, उपकरण अथवा मशीनों के उपयोग जिससे कृषक को अधिक फसल उत्पादन में सहायता मिले अथवा जिससे कृषि क्रियाऐं अधिक आराम से कम समय और कम खर्च पर की जा सके यन्त्रिकरण कहते हैं। इसके द्वारा श्रम और पूँजी के अनुपात में परिवर्तन लाया जा सकता है। कृषि यन्त्रों के उपयोग से प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमीं, श्रम की कार्य क्षमता में वृद्धि, प्रति हैक्टेयर, भू—उत्पादन में वृद्धि, कृषि कार्य में समय की बचत, भू—उपयोग में सुधार, भू— प्रबन्धन तथा पशुओं की मांग में कमीं लाई जा सकती है। आलोच्य जिलों में वर्तमान बदलते परिवेश में कृषि में यंत्रीकरण का अहम योगदान है।

कृषि यन्त्रों के निवेश का प्रादेशिक वितरण—

चयनित क्षेत्र में वर्ष २०११ में प्रति १०० हैक्टेयर पर यन्त्र (तेल ईन्जन, विद्युत पम्प व ट्रैक्टर) को ज्ञात किया गया है। शोध क्षेत्र में कृषि यन्त्रों का निवेश उतरोत्तर वृद्धि में मिलता है, जिसका प्रमुख कारण बढ़ती जनसंख्या का

कृषि भूमि पर बढ़ता दबाव, भू—उपयोग, भूमि सुधार, भूमि प्रबन्ध, भूमि समतलीकरण, आदि का कारण है। वर्ष २०११ में प्रति १०० हैक्टेयर कृषि भूमि पर ४.६६ यन्त्रों का निवेश पाया गया है। क्षेत्र में तहसीलवार कृषि विभिन्न यन्त्रों का वितरण असमान है, जिसका विवरण तालिका—१ में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका — १

क्षेत्र में तहसीलवार कृषि यन्त्रों का निवेश (प्रति १०० है. में)

वर्ष २०११

क्र. स.	संवर्ग	श्रेणी	तहसीलों की संख्या	तहसीलों के नाम
१	झ६	उच्च	०४	टिब्बी, हनुमानगढ़, रावतसर, पीलीबंगा
२	३ से ६	मध्यम	०९	गंगानगर, करणपुर, पदमपुर, रायसिंहनगर, अनूपगढ़, सादुलशहर, संगरिया विजयनगर, घड़साना
३	ढ३	निम्न	०३	सूरतगढ़, नोहर, भादरा

क्षेत्र में कृषि यन्त्रों के निवेश में उतरोत्तर वृद्धि पाई गई है। जिसका प्रमुख कारण सिंचाई सुविधाओं में उतरोत्तर वृद्धि, कृषि में आधुनिकीकरण का रहा है। कृषि यन्त्रों के निवेश से भू—उपयोग में भी उतरोत्तर वृद्धि हुई है, इसके साथ—साथ भूमि सुधार, भूमि समतलीकरण, भूमि का उचित प्रबन्धन भी हुआ है। शोध क्षेत्र में कृषि यन्त्रों के अधिक निवेश होने से न केवल भू—उपयोग में सुधार हुआ है बल्कि कृषि उत्पादन में फसल विविधता, फसल क्षेत्र व सिंचित क्षेत्र भी वृद्धि पाई गई है।

जिलों में वर्षवार कृषि यन्त्रों का निवेश—

चयनित जिलों में जैसे—जैसे सिंचाई सुविधाओं का विस्तार होता गया वैसे—वैसे भू—उपयोग में भी सुधार हुआ है। भू—उपयोग में सुधार होने से क्षेत्र में उत्पादन व उत्पादकता में भी उतरोत्तर वृद्धि पाई गई है। क्षेत्र में अधिक उत्पादन करने के लिए यंत्रों का निवेश भी अधिकाधिक बढ़ा है। वर्तमान में शोध के लिए चयनित जिलों में पंजीकरण से कृषि व्यापारीकरण की ओर अग्रसर हुई है क्षेत्र में वर्षवार कृषि यंत्रों का विवरण तालिका—२में दर्शाया गया है।

तालिका — २

जिलों में वर्षवार कृषि यन्त्रों का निवेश १९७५—२०११

वर्ष	डीजल इंजन	विद्युत पम्प	ट्रैक्टर
१९७५	३८३५	६२४	२४७१
१९८०	२०९६	१०७९	७४८८
१९८५	४५७६	२५५१	२१२०३
१९९०	३६५१	१६८४	२१३१०
१९९५	३७१०	२८४०	३०९२०
२०००	३७९४	७४६०	४०७७५
२००५	३८८७९	८८५४	५०६८८
२०११	३८९८७	१२६४४	५८६२४

स्रोत— जिला सांख्यिकी विभाग, श्रीगंगानगर व हनुमानगढ़

तालिका २ के अनुसार जिलों में यन्त्रों के निवेश स्थिति में ट्रेक्टरों का योगदान महत्वपूर्ण है। वर्ष १९७५ में ट्रैक्टरों की संख्या २४७१ थी जो वर्ष २०११ में बढ़कर ५८६२४ हो गई, जिसमें ५६१५३ की वृद्धि पाई गई है क्योंकि इनका उपयोग क्षेत्र में बहुमुखी है, इसका उपयोग न केवल जुताई में होता है वरन् कृषि उत्पाद और उनमें प्रयोग में लाये जाने वाले सहायक साधनों के परिवहन में भी किया जाता है। दूसरे क्रम में डीजल चालित इंजन का स्थान है तथा तीसरे क्रम में विद्युत पम्प है जिनमें क्रमशः ३५१५२ व १२०२० की उतरोत्तर वृद्धि मिलती है। डीजल इंजन व विद्युत पम्प का सर्वाधिक उपयोग नलकूपों से सिंचाई के लिए किया जाता है। जिलों में आधुनिक कृषि यन्त्रों में मिनी कम्पेन, रोटोमीटर कटर, कम्प्यूटर समतलीकरण (कम्पाईन, रिपर) आदि यन्त्रों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

श्रम निवेश—

आलोच्य जिलों की कृषि श्रम प्रधान है। कृषि क्षेत्र में कृषकों व कृषि श्रमिकों का भार इतना अधिक है कि इन जिलों में श्रमातिरेक की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है, और कृषि श्रमिकों को साल भर पूरा कार्य न मिलने के कारण वे अर्द्धबेरोजगार होते हैं। दोनों जिलों में कृषि यन्त्रीकरण के साथ—साथ श्रम शक्ति भी प्रधान है। कृषि में श्रम निवेश पूर्ती ग्रामीण जनसंख्या के घनत्व, आयुवर्ग व लिंगानुपात पर निर्भर करती है। ये श्रम निवेश के आकार को निर्धारित करते हैं। कृषि में श्रम की आपूर्ति तीन प्रकार के श्रमिकों से की जाती है— कृषक, कृषि श्रमिक और सीमान्त। श्रम निवेश को प्रति १०० हैक्टेयर भूमि पर आश्रित श्रमिकों की संख्या से निर्धारित किया जाता है, जिसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया है—

$$\text{श्रम निवेश} \quad \frac{\text{कृषक + कृषि श्रमिक}}{\text{कुल कृषि भूमि}} \times 100$$

सन् २०११ की जनगणना के अनुसार संभाग में प्रति १०० हैक्टेयर कृषि भूमि पर लगभग ११३ व्यक्ति कृषि कार्य में सीधे संलग्न है। इन जिलों में जैसे—जैसे सिंचाई सुविधाओं का विस्तार व भू—उपयोग में सुधार होता गया वैसे—वैसे कृषि में आधुनिकता का प्रसार भी होता गया। जिलों में जैसे—जैसे यांत्रिक कृषि यन्त्रों का निवेश होता गया वैसे—वैसे पशुशक्ति व श्रम शक्ति निवेश में कमीं आती गई। क्षेत्र में तहसीलवार श्रम निवेश में भारी असमानता पाई जाती है, जिसका वितरण तालिका — ३ में दर्शाया गया है।

तालिका — ३

जिलों में श्रम निवेश का तहसीलवार वितरण २०११ (प्र. १०० है.)

क्र. स.	संवर्ग	श्रेणी	तहसीलों की संख्या	तहसीलों के नाम
१	झ२००	अति. उच्च	०१	**घड़साना**
२	१५० से २००	उच्च	०४	**अनुपगढ़, विजयनगर, नोहर, रातवसर**
३	१०० से १५०	मध्यम	०६	**करणपुर, पदमपुर, रायसिंहनगर, टिब्बी, भादरा, पीलीबंगा**
४	**ढ१००**	**निम्न**	०५	**गंगानगर, सादुलशहर, सूरतगढ़, संगरिया, हनुमानगढ़**

आलोच्य जिलों में श्रम निवेश में कमीं का प्रमुख कारण सिंचाई सुविधाओं में उतरोत्तर वृद्धि होने से आधुनिक कृषि यन्त्रों का अधिकाधिक निवेश होने का रहा है। दोनों जिलों की ग्रामीण जनसंख्या में भी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप कृषि भूमि पर दबाव बढ़ता जा रहा है व जोतों के आकार में भी विषमता आती जा रही है। जिस कारण कृषि श्रमिकों में लगातार वृद्धि हो रही है।

जिलों में कृषि श्रमिकों के निम्न जीवन स्तर के कारण उनकी कार्य क्षमता भी कम है, अतिरिक्त श्रम निवेश उपलब्ध न होने के कारण अथवा श्रमाधिक्य के कारण श्रममूल्य कम है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव कृषक समाज की आर्थिक स्थिति पर पड़ रहा है। आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु यह आवश्यक है कि सघन कृषि विकास योजनाएँ क्रियान्वित कर कृषि उत्पादन बढ़ाया जाये। कृषि के अतिरिक्त विकल्प के रूप में कुटिर व लघु उद्योगों की स्थापना, प्राविधिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था, ऋण के रूप में पूँजी की व्यवस्था आदि के द्वारा अतिरिक्त श्रम निवेश का सदुपयोग औद्योगिक तथा व्यावसायिक कार्यों में हो सकेगा। एन. सी. ई. आर. के अनुसार यह आवश्यक है कि कृषि उत्पादन एंव भू—उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अतिरिक्त वृहत् पैमाने पर कुटीर व लघु उद्योगों के कार्यक्रम में श्रम निवेश की मांग में वृद्धि की जानी चाहिए।

अध्ययन क्षेत्र में जैसे—जैसे सिंचाई सुविधाओं में उतरोत्तर वृद्धि होती गई वैसे—वैसे आधुनिक यन्त्रों का निवेश अधिक होने लगा तथा श्रम शक्ति निवेश व पशुशक्ति निवेश में कमीं आती गई। क्षेत्र आधुनिक कृषि यन्त्रों के निवेश से भू—उपयोग में भारी सुधार हुआ है जिससे चालु पडत भूमि, अन्य पडत भूमि तथा कृषि अयोग्य भूमि को सुधार कर उसको समतलीकरण करके कृषि योग भूमि में परिवर्तित किया, इसके साथ—साथ भूमि का उचित प्रबन्धन भी किया है जैसे अपरदित भूमि को रोकना, उसर भूमि को सुधारना, क्षारिय भूमि को सुधारना, भूमि में मेड़बन्धी करके उसे सिंचाई योग्य बनाना, असिंचित भूमि का सिंचाई योग्य बनाना, आदि में आधुनिक कृषि यन्त्रों की अहम भूमिका रही है।

शस्य प्रबन्धन

मृदा संरक्षण—

मृदा अपरदन और मृदा क्षय मानव द्वारा किया जाता है तो स्पष्ट है कि मानवों द्वारा ही इसे रोका भी जा सकता है। पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्रकृति के अपने नियम है। मनुष्य इन नियमों का उल्लंघन करता है और मृदा अपरदन तथा क्षय जैसी समस्याओं को जन्म देता है। सन्तुलन बिना बिगाड़े भी प्रकृति मानवों को अपनी अर्थव्यवस्था का विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। मृदा संरक्षण एक विधि है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनाई रखी जाती है तथा मिट्टी के अपरदन और क्षय को रोका जाता है व मिट्टी की अपक्षरित दशाओं को सुधारा जाता है। मृदा अपरदन वास्तव में मनुष्यकृत समस्या है किसी भी तर्कसंगत समाधान से पहला काम ढालों की कृषि योग्य खुली भूमि पर खेती को रोकना है। अति चराई से भी भूमि का प्राकृतिक आवरण दुष्प्रभावित होता है। अतः चयनित क्षेत्र में इनके दुष्परिणामों से अवगत कराकर इन्हें अति चराई पर नियंत्रित करना चाहिए, इसके साथ—साथ क्षेत्र में समोच्च रेखा के अनुसार मेडबंधी, नियमित वानिकी, नियंत्रित चराई, वर्णात्मक खरपतावार नाशक, आवरण फसलें उगाना, मिश्रित खेती तथा शस्यावर्तन, उपचार के कुछ ऐसे तरीके हैं, जिसका उपयोग क्षेत्र की मृदा अपरदन को कम करने के लिए किया जाना चाहिए।

आलोच्य जिलों में नहरों, खालों में अवनालिका अपरदन को रोकने तथा उनके बनने पर नियन्त्रण के प्रयत्न किए जाने चाहिए। क्षेत्र

की रेतीली भूमि के टिलों के प्रसार को वनों की रक्षक मेखला बनाकर रोकना चाहिए। कृषि अयोग्य भूमि को चराई के चरगाहों में बदल देना चाहिए। वायु के टिलों को स्थिर करने के उपाय भी अपनाये जाने चाहिए। भारत सरकार द्वारा स्थापित केन्द्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड देश के विभिन्न भागों में मृदा संरक्षण के लिए अनेक योजनाएँ है। ये योजनाएँ जलवायु की दशाओं उच्चावच के लक्षणों तथा लोगों के सामाजिक व्यवहार पर आधारित है। मृदा सरंक्षण का सर्वोतम उपाय भूमि उपयोग की समन्वित योजनाएं ही हो सकती है। भूमि का उनकी क्षमता के अनुसार वर्गीकरण होना चाहिए, भूमि उपयोग मानचित्र बनाये जाने चाहिए और भूमि का सर्वेक्षण सही उपयोग में किया जाना चाहिए। मृदा संरक्षण का निर्यातक दायित्व उन लोगों पर है जो उसका उपयोग करते हैं, और उससे लाभ कमाते हैं। लेकिन किसानों को इस बात के लिए तैयार करना चाहिए कि अपने खेतों की सीमाएं सर्वोच्च रेखीय समतल के अनुसार बनायें।

पौध संरक्षण—

कृषि में पौध संरक्षण का महत्व उतरोत्तर बढ़ता जा रहा है। अधिक उपज देने वाली प्रजातियों के प्रयोग से तो इसका महत्व और भी बढ़ गया है। यही कारण है कि सरकार आज कृषि उत्पादन के नुकसानों को रोकने का भरपुर प्रयास कर रही है। इसके लिए समय पर बीमारियों एवं नाशीकीटकों के पता लगाने एवं उनकी रोकथाम के प्रयास सम्मिलित है। टिड्डियों के प्रजनन क्षेत्रों की निगरानी तथा पूर्व सूचना हेतु नियमित हवाई सर्वेक्षण किया जाता है। इसके लिए राष्ट्रीय रिमोंट सेंसिग संगठन का सहयोग भी किया जाता है, जिसके लिए जोधपुर के पास एक स्टेशन स्थापित किया गया है। इसी प्रकार क्षेत्रिय सर्वेक्षण हेतु एक केन्द्र बीकानेर में कार्यरत है। बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत पोध संरक्षण डायरेक्ट्रेट के १७५ गांव को अपनाया गया है। चयनित दोनों जिलों में पौध संरक्षण के लिए कृषि विस्तार, कृषि अनुसंधान, सहकारी संस्थाएँ, गैर सहकारी संस्थाएँ, निजी संस्थाएँ भी उर्वरक व कीटनाशक दवाईयाँ उपलब्ध करवा रही हैं।

खरपतवार—

वे अवांछनीय पोधे जो किसी स्थान पर बिना बोये उग जाते हैं, ओर प्रमुख फसलों के लिए हानिकारक होते हैं, खरपतवार कहलाते हैं। खरपतवार पोधों की ऐसी जातियाँ है जों अवांछित रूप से उस स्थान पर उगती है जहाँ वे उपयोगी नहीं होती है। खरपतवार फसल के पौधों की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में बीज उत्पन्न करते हैं। इनकी जड़ें बहुत ही गहराई तक जाती है, व बीजों के उगने की क्षमता बहुत लम्बे समय तक रहती है, कई—कई खरपतवारों पर चिपे—चिपे पदार्थ, बाल, काटे आदि होते है। ज्यादातर, खरपतवारों का आकार, रंग, बनावट, सहचर फसल जैसा होता है, ये खरपतवार फसल के साथ—साथ पकते है, ये फसलों की अपेक्षा रोग, बीमारियों व प्रतिकूल दशाओं के प्रति अधिक प्रतिरोधक होते है। अधिकतर खरपतवारों के बीज व फलों पर उपांग पाये जाते है, इन खरपतवार बहुत तेजी से बढ़ते है। इन खरपतवारों से फसलों को भारी नुकसान पहुँचता है इनकी अधिक संख्या होने से उत्पादन व भूमि की उत्पादकता पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, जैसे— फसलों की उपज में कमी, फसलों के गुणों में कमी, पशुधन उत्पादों व गुणवत्ता में कमी, मनुष्य के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव, खरपतवार में रोगों तथा कीटों की शरण, खरपतवारों द्वारा भूमि के मूल्य में कमी, कृषि यन्त्रों व मजदूरों पर व्यय, जलीय साधनों में अवरोध उत्पन्न, सहचर, फसल का मुल्य कम, तथा आर्थिक स्थिति पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है।

अधिक उत्पादन देने वाले बीजों के क्षेत्रफल में वृद्धि की प्रवृति—

शोध के चयनित जिलों में अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का प्रयोग लगभग १९६५ के बाद प्रारम्भ हुआ। जिलों में अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का क्षेत्र वर्ष वार गेहूँ व बाजरा का ही प्राप्त हुआ है। अन्य फसलों का वर्षवार वितरण न मिलने के कारण गेहूँ व बाजरा की फसलों का वर्णन किया गया है। सन् १९७५ तक जिलों में ५३.१४ प्रतिशत क्षेत्र गेहूँ में व बाजरा में ६.५७ प्रतिशत क्षेत्र अधिक उत्पादन देने वाले बीजों के अन्तर्गत था। दोनों जिलों में जैसे—जैसे सिंचाई के क्षेत्र में विस्तार हुआ वैसे—वैसे अधिक उत्पादन देने वाले बीजों के क्षेत्र में वृद्धि होती गई है। इन जिलों में १९८० में गेहूँ के कुल बोये गये क्षेत्र के ४७.१९ प्रतिशत व बाजरा के १४.३९ प्रतिशत क्षेत्र में अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का प्रयोग किया गया।

जो वर्ष १९७५ की तुलना में गेहूँ में कम व बाजरा में अधिक मिलता। १९८५ में वृद्धि के साथ गेहूँ कुल क्षेत्रफल में ७१.५४ प्रतिशत क्षेत्रफल बाजरा के कुल क्षेत्र में ४७.५८ प्रतिशत क्षेत्र में अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का प्रयोग मिलता है। वर्ष १९९० में गेहूँ में कम व बाजरा के क्षेत्र में अधिक उत्पादन देने वाले बीजो का प्रयोग में भारी वृद्धि पाई गई है। वर्ष १९९५ में गेहूँ व बाजरा दोनों फसलों में उतरोत्तर वृद्धि पाई गई है। वर्ष २००० में गेहूँ के क्षेत्र में वृद्धि व बाजरा के क्षेत्र में भारी कमी देखने को मिलती है। जिनका प्रमुख कारण जिलों में बाजरा का उत्पादन अधिकतर, असिंचित क्षेत्र में किया जाता है, जो कि वर्षा पर निर्भर करता है। वर्ष २००० से २०११ तक दोनों ही फसलों में अधिक उत्पादन देने वाले बीजों के प्रयोग में भारी वृद्धि देखने को मिलती है। इस तरह जिलों में अन्य फसलों जैसे— अखाद्य फसलें, कपास, गन्ना व दलहन फसलें तथा तिलहन फसलों में भी उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग कर उत्पादन में उतरोत्तर वृद्धि हो रही है।

कृषि विकास—

कृषि प्रदेशों की तरह कृषि विकास भी क्षैतिज विस्तार वाला एक बहुलाक्षणिक और कर्मोपलक्षी प्रदेश होता है। एक कृषि विकास प्रदेश के विभिन्न भागों में कृषिगत दशाओं और उत्पादन सम्बन्धी विशेषताओं की समांगता पाई जाती है। प्रदेश सम्बन्धी अध्ययन एक स्थानिक एवं प्रादेशिक विचार है। कृषि विकास का प्रदेश एक ऐसा धरातलीय खण्ड होता है जिसकी निश्चित सीमाओं के भीतर निवेश एवं उत्पादन सम्बन्धी दशाएँ एवं संश्लिष्ट एवं सुसंबद्ध होती है कि वह एक विशिष्ट पहचान का क्षेत्र बन जाता है। जो संलग्न प्रदेश से भिन्न होता है। यह प्रमुख रूप से इकाईयों के कृषि सम्बन्धी कारकों की भिन्नताओं पर आधारित समष्टिगत तथा क्षेत्रिय संकल्पना है। एक कृषि विकास प्रदेश कृषिगत दशाओं एवं विशेषताओं में अन्य कृषि विकास प्रदेश से भिन्न होता है। कृषि विकास के प्रदेश क्षेतिज विस्तार में छोटे अथवा बड़े आकार के हो सकते हैं।

कृषि विकास के प्रदेशों का अध्ययन कृषि के नियोजन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। कृषि विकास के नियोजन में केवल निवेशों की पूर्ती में वृद्धि अथवा फसलों की उत्पादकता में वृद्धि का ही लक्ष्य नहीं होना चाहिए, वरन् कृषि भूमि उपयोग का संतुलित, विविध प्रकार के उपयोग और आर्थिक लाभप्रद का दृष्टिकोण भी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त देश की आवश्यकताओं के अनुरूप शस्य स्वरूप में परिवर्तनशीलता भी नियोजन का आवश्यक अंक है। खाद्यान एवं व्यापारिक फसलों के बीच आवश्यक संतुलन होना आवश्यक है। कृषि विकास के नियोजन में केवल अनाज की फसलों में उच्च उत्पादकता प्राप्त करने का लक्ष्य नहीं होना चाहिए वरन् देश की

आवश्यकताओं के अनुरूप दालें तिलहन व अन्य व्यापारिक फसलों में भी उच्चतम उत्पादकता प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए, ताकि कृषि एक लाभप्रद व्यवसाय हो सके। कृषकों की दशा में सुधार हो सके, इसके अतिरिक्त दी गई कृष्य जलवायु दशाओं, में जो भी वैकल्पिक फसल चक्र अधिक लाभप्रद और संभव हो उसे अपनाने का प्रयास होना चाहिए। इस तरह कृषि विकास का अध्ययन कृषि नियोजन में भी बहुत सहायक होता है। कृषि प्रदेशों के निर्धारण हेतु चरों का चुनाव कृषि आन्तरिक विशेषताओं के आधार पर किया गया है। आन्तरिक विशेषताओं में उत्पादन सम्बन्धी दशाओं एवं संरचना आधार सम्मिलित है। आन्तरिक विशेषताओं के आधार पर निर्मित कृषि विकास के प्रदेश वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत है तथा इनमें स्थायित्व भी अधिक होता है।

कृषि विकास प्रदेश वस्तुतः कृषि प्रदेश होते है जिनमें विकास के कारकों पर अधिक बल दिया जाता है ताकि कृषि विकास के स्तरों का निर्धारण किया जा सके। चयनित चरों में न केवल उत्पादन सम्बन्धी दशाओं को नापने वाले चरों को आधार बनाया गया है। वरन् कृषि उत्पादनता को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रतिशत चरों के रूप में सम्मिलित किया गया है।

कृषि के सामाजिक एवं स्वामित्व सम्बन्धी दशाओं के अन्तर्गत जोतों के औसत आकार को सम्मिलित किया गया है। श्रम निवेश पशुशक्ति निवेश, यांत्रिक शक्ति निवेश, सिंचाई, उर्वरकों के उपयोग तथा अधिक उत्पादन देने वालें बीजों के क्षेत्र सम्बन्धी चर, कृषि की तकनीकी एवं सगठनात्मक दशाओं के अन्तर्गत आते है और कृषि उत्पादन को प्रभावित करते है। उत्पादन सम्बन्धी दशाओं में भू—उत्पादन, श्रम उत्पादकता की मात्रा तथा स्तर उत्पादकता के स्वयं के गुण है। ये उत्पादन की विशेषता को प्रकट करते है। इस तरह कृषि विकास के सभी आयामों को विकास प्रदेशों में संश्लेषित किया गया है। अर्थ शास्त्र की दृष्टि से भी उत्पादन के चरों जैसे— भूमि, श्रम, पूँजी, तथा संगठन इन चरों में सम्मिलित है। अतः कृषि विकास के प्रदेशों का आधार व्यापक है।

अध्ययन हेतु चयनित जिलों की कृषि श्रम प्रधान है जिसमें खाद्यान्न उत्पादन को प्रमुखता दी जाती है। श्रम निवेश का पशुशक्ति, शुद्ध सिंचित क्षेत्र के साथ उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध है। जबकि कृषि यन्त्रों, उन्नत बीजों, सिंचित क्षेत्र व प्रतिजोत उत्पादन के साथ मध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध है। पशुशक्ति शक्ति निवेश का उन्नत बीज, सिंचित क्षेत्र के साथ उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध व शुद्ध सिंचित क्षेत्र व प्रतिजोत उत्पादन के साथ मध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध है। कृषि यन्त्रों का उन्नत बीज, सिंचित क्षेत्र व प्रतिजोत उत्पादन के साथ उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध है जो यह प्रकट करता है कि यंत्रीकरण में वृद्धि होने पर उर्वरकों एवं अधिक उत्पादन देने वाले बीजों के क्षेत्र में वृद्धि होती है, पर शुद्ध सिंचित क्षेत्र के साथ मध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध है। शुद्ध सिंचित के साथ उन्नत बीज, सिंचित क्षेत्र व प्रतिजोत उत्पादन के साथ मध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध है। उन्नत बीज का सिंचित क्षेत्र व प्रतिजोत उत्पादन के साथ उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध है। अतः जिलों में उन्नत बीजों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है। सिंचित क्षेत्र का प्रति जोत उत्पादन के साथ उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध है।

सहसम्बन्ध गुणांको के इस विशलेषण से यह स्पष्ट है कि इन जिलों में कृषि में यंत्रीकरण, सिंचाई, व उर्वरकों का उपयोग अधिक होने के कारण इनका प्रभाव उत्पादन पर उच्च स्तर का है। दूसरी ओर श्रम निवेश उच्च होने के कारण उत्पादन तथा सिंचाई पर प्रभाव अधिक और धनात्मक है। सिंचित क्षेत्र का प्रति

जोत उत्पादन के साथ उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध है।

सहसम्बन्ध गुणांको के इस विशलेषण से यह स्पष्ट है कि जिलों में कृषि में यंत्रीकरण, सिंचाई, व उर्वरकों का उपयोग अधिक होने के कारण इनका प्रभाव उत्पादन पर उच्च स्तर का है। दूसरी ओर श्रम निवेश उच्च होने के कारण उत्पादन तथा सिंचाई पर प्रभाव अधिक और धनात्मक है।

मानक जेड स्कोर विधि पर आधारित कृषि विकास प्रदेश—

विधि तंत्र—

गंगानगर व हनुमानगढ़ जिलों में कृषि विकास प्रदेशों के निर्धारण एवं सीमांकन हेतु

$$zi = \frac{xi - \bar{x}}{Q}$$

यहाँ ʻप त्र प्रक्षेण की मानकीकृत संख्या है।

गप त्र चर की मूल संख्या है।

ग त्र चर की सभी इकाईयों के मूल्यों का औसत है तथा

फ त्र ग का मानक विचलन है।

जब चर की विभिन्न इकाईयों को ʼजेडʼ स्कोर में परिवर्तित किया जाता है तब मध्यमान से नीचे के मान ऋणात्मक तथा ऊपर के मान धनात्मक रूप में प्राप्त होते हैं। फिर प्रत्येक तहसीलों के विभिन्न चरों के ʼजेडʼ स्कोर का योग करके ʼजेडʼ सूचकांक निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात किया है।

$$zi = \frac{xi - \bar{x}}{Q} + zii = \frac{xii - \bar{x}}{Q} \quad .... \quad zn = \frac{xn - \bar{x}}{Q}$$

ʼजेडʼ स्कोर के सूचकांकों को वर्गीकृत करके कृषि विकास प्रदेशों का निर्धारण किया गया है। सूचकांकों का मान धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है। इस विधि में किसी भी इकाई को चर विशेषतज्ञा का धनात्मक मान उसके बाहुल्य और ऋणात्मक मान अभाव का द्योतक है। यदि चर मानक ʼजेडʼ स्कोर की रूपान्तरण विधि का उपयोग किया गया है। ʼजेडʼ स्कोर विभिन्न परिमाप के और विभिन्न परिसर आंकड़ों को मानकीकृत कर देता है जिससे प्रदेश के स्तर का निर्धारण सरलता से हो जाता है। इस विधि से जिलों की १६ तहसीलों के ८ चरों के आंकड़ों को ʼजेडʼ स्कोर रूपान्तरण विधि से मानकीकृत कर एक तल पर लाया गया है। इस विधि के अनुसार जिलों की १६ तहसीलों में प्रत्येक चर के वितरण का माध्य एवं मानक विचलन ज्ञात किया जाता है। मध्यमान को शून्य पर स्थित किया जाता है। जबकि मानक विचलन को इकाई पर स्थिर किया जाता है। एक चर के ʼजेडʼ स्कोर को निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जाता है।

विशेष संतुलित स्थिति में होगा तो मानकीकृत संख्या शून्य होगी। यह चिह्न भ्रम उत्पन्न करते हों तो उन्हें सर्वाधिक ऋणात्मक मान अधिक एक स्थिरांक से जोड़कर सभी सूचकांकों को धनात्मक बनाया जा सकता है। अथवा ʼजेडʼ स्कोर में पाये जाने वाले दशमलव को १०००० या १००० के स्थिरांक से गुणा करके उन्हें पूर्णांक में बदला जा सकता है। सुविधा हेतु किये गये इन परिवर्तन को व्युत्पन्न प्राप्तांक की संज्ञा दी गई है।

सन्दर्भ

1 Abha Laxi Sing and Shabad Fazal (1992) : “Changes in cropping pattern due to variation n prices in Upper Ganga Yamna Doab” The Geographer 39 (1) : 16.

2. Barua S, G.K. Saikia and A. Deka (2004) : “Plantation crops in North Eastern India : Constraints and strategies” In proceedings of 10th Workshop National Center for Agricultural Economics and Policy Research.

3. Basu Shila (1992) : “Meteorological approach for estimation of water availability period in Cooch Bihar district Vis-à-vis judicious crop planting” Geographical review of India volume 53, numer 1, page 49.

4. Abha Laxmi Singh (1992) : "Impact of different sources of irrigation on cropping pattern yields and farm practices". The Geographical review of India 54 (1) : 19.
5. Anonymous (2005) : "Ground water report" Central Ground Water Board Jaipur.
6. Ashok Gulati (2005) : "Institutional reforms in Indian Irrigation System" page 48.
7. Bandyopadhyay, J, Malik, B, Mandal & Perveen (2002) : "Dams and Development" Everyman's Science XXXVII(2) : 75.
8. Bansal S.K. (2002) : "Problems and Prospects of Ground Water Fluctuations in Haryana" Uttar Pradesh Geographical Journal v.7 P-56.
9. Bathla Seema (2002) : "Water Resource Potential in Northern India : Constraints and Analysis of Price and Non-Price Solutions, Environment, Development and Sustainability Vol. 1, Number 2 page 105-121.
10. Bharmbe, P.R. (2001) : Shinde, S.D. Rodge, R.P. Jadhav, G.S. and Sheke, D.K. : "Water table fluctuations quality of Ground water and soil healt in Jayakwadi Command" Journal of the India, Society of Soil Science. 49 (1) : 190.
11. Das, Madhumita and Maji B (2001) : "Seasonal fluctuation in Salinisation of Soil and Ground Water and its spatial heterogeneity with time" Journal of the India, Society of Soil Science 49 (4) : 773.
12. Deepak Khare, M.K. Jat, Deve Sunder (2007) : "Assessment of Water Resources allocation options : Conjunctive use planning in a link canal command" Resources conservation and Recycling 51 (2).